कैकेयी का पश्चात्ताप (मैथिलीशरण गुप्त)

"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को।"

चौंके सब सुनकर अटल कैकेयी-स्वर को।

सबने रानी की ओर अचानक देखा,

वैधव्य-तुषारावृता यथा विधु-लेखा।

बैठी थी अचल तथापि असंख्यतरंगा,

वह सिंही अब थी हहा! गोमुखी गंगा-

हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना,

सब सुन लें, तुमने स्वयं अभी यह माना

यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,

अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।

{**शब्दार्थ** — अटल-जो टलने वाला न हो, स्थिर वैधव्य-विधवापन:

तुषारावृता- कुहरे से ढकी हुई; विध-लेखा-चन्द्रमा की रेखा, चाँदनी. अचल-स्थिर; असंख्यतरंगा- अनगिनत लहरों वाली; सिंही-सिंहनी: हहा-दीनता का भाव पूर्ण; गोमुखी-गाय के मुख वाली; जनकर -जन्म देकर; अपराधिन-दोषी।}

संदर्भ- प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी पाठ्यपुस्तक के 'पद्य-मंजरी' में संकलित कविता 'कैकेयी का पश्चात्ताप' से लिया गया है जो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' के आठवें सर्ग में संग्रहित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश में राम की बात सुनकर माता कैकेयी स्वयं को दोषी सिद्ध करती हुई उनसे अयोध्या लौटने की बात कहती हैं।

व्याख्या- राम की इस बात को सुनकर कि भरत को स्वयं उसकी माता भी न पहचान सकी, कैकेयी कहती हैं कि यदि यह सच है, तो अब तम अपने घर लौट चलो अर्थात् मेरी उस मूर्खता को भूलकर

Edit with WPS Office

अयोध्या चलो। जिसके परिणामस्वरूप मैंने तुम्हारे लिए वनवास की माँग की थी। कैकेयी के मुख से दृढ़ स्वर में कही गई इस बात को सुनकर सब विस्मित रह गए और अचानक उनकी ओर देखने लगे। उस समय विधवा रूप में श्वेत वस्त्र धारण कर वे ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो कुहरे ने चाँदनी को ढक लिया हो। स्थिर बैठी होने के पश्चात भी उनके मन में विचारों की अनगिनत तरंगें उठ रही थीं। कभी सिंहनी-सी प्रतीत होने वाली रानी कैकेयी आज दीनता के भावों से भरी थीं। आज वह गंगा के सदृश शान्त, शीतल और पावन थीं।.

कैकेयी आगे कहती हैं कि सभी लोग सुन लें-मैं जन्म देने के पश्चात् भी भरत को न पहचान सकी। अभी-अभी राम ने भी इस बात को स्वीकार किया है। वह राम से कहती हैं कि यदि तुम्हारी कही बात सच है तो तुम अयोध्या लौट चलो। अपराधिनी मैं हूँ, भरत नहीं। तुम्हें वन में भेजने का अपराध मैंने किया है। इसके लिए मुझे जो दण्ड चाहो दो, मैं उसे स्वीकार कर लूँगी, परन्तु घर लौट चलो, अन्यथा लोग भरत को दोषी मानेंगे।

<u>काव्य सौन्दर्य</u>

भाव पक्ष

(i)प्रस्तत पद्यांश में कैकेयी को अपराध-बोध से ग्रसित दिखाया गया है। राम को घर लौटने का अनुरोध करके वह सदमार्ग की ओर अग्रसर होती दिख रही हैं।

(ii) रस शान्त एवं करुण

कला पक्ष

भाषा- परिष्कृत खड़ीबोली

शैली- प्रबन्धात्मक, छन्द- मन्दाक्रान्ता

अलंकार- उत्प्रेक्षा, उपमा एवं रूपक

गुण- प्रसाद, शब्द शक्ति- अभिधा एवं लक्षणा।

"दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,

पर, अबलाजन के लिए कौन-सा पथ है?

Edit with WPS Office

यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,

तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ.

ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो

पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।

करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ?"

राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ?"

थी सनक्षत्र शशि-निशा ओस टपकाती,

रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती।

उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी,

सबमें भय-विस्मय और खेद भरती थी।"

[शब्दार्थ- शपथ-सौगन्ध; अबलाजन-नारियाँ पथ-मार्ग; उकसाना–बहकाना; सार-निचोड़, यथार्थ बात; पहाड़-सा पाप-घोर अपराध; राई भर-बहुत थोड़ा; अनुताप-पश्चाताप, पछतावा; सनक्षत्र-तारों सहित; शशि-निशा-चाँदनी रात: नीरव-शान्त; उल्का-टूटकर गिरने वाला तारा: दीप्त-प्रकाशित; विस्मय-आश्चर्य; खेद-दु:ख।]

सन्दर्भ- प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी पाठ्यपुस्तक के 'पद्य-मंजरी' में संकलित कविता 'कैकेयी का पश्चात्ताप' से लिया गया है जो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' के आठवें सर्ग में संग्रहित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि ने कैकेयी के पश्चाताप को अपूर्व ढंग से अभिव्यंजित किया है।

व्याख्या- कैकेयी भरत की सौगन्ध खाते हुए राम से कहती हैं कि सौगन्ध खाने से व्यक्ति की दुर्बलता प्रकट होती है, परन्तु स्त्रियों के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं हैं। वह राम को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे राम! मुझे तुम्हारे वनवास के लिए भरत ने नहीं उकसाया था। यदि यह सच नहीं तो मैं पति के समान ही। अपना पुत्र भी खो बैलूं। मुझे यह कहने से कोई न रोके। मैं जो कह रही हैं, सभी सुन लें। यदि मेरे कथनों में कोई यथार्थ बात हो तो उसे ग्रहण कर लें। मुझसे

Edit with WPS Office

यह न सहा। जा सकेगा कि मैं इतना बड़ा पाप करके थोड़ा भी पश्चाताप प्रकट न करूँ और मौन रह जाऊँ।

कैकेयी के यह सब कहने के दौरान तारों से भरी चाँदनी रात ओस के रूप में अश्रु-जल बरसा रही थी और नीचे मौन सभा हृदय को थपथपाते हुए रुदन कर रही थी। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि कैकेयी के हृदय-परिवर्तन और उनके पश्चाताप को देख सभा में उपस्थित सभी लोगों की संवेदना उनके साथ थी मानो सभासद सहित प्रकृति ने भी उन्हें उनके अपराध के लिए क्षमा कर दिया हो। रानी कैकेयी, जिसने अपनी अनुचित माँग से पूरे अयोध्या और वहाँ के निवासियों का जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया था, आज पश्चाताप की अग्नि में जलकर चारों ओर सदभाव की किरणें बिखेर रही थीं। उनके इस नए रूप के परिणामतः वहाँ उपस्थित लोगों में एक साथ भय, आश्चर्य और शोक के भाव उमड़ रहे थे।

<u>काव्य सौन्दर्य</u>

भाव पक्ष

(i) यहाँ कवि ने कैकेयी के पश्चाताप में उपस्थित लोगों व प्रकृति को भी उनकी संवेदना का हिस्सा बनाने का भाव व्यक्त किया है।

(ii) रस करुण

कला पक्ष

भाषा- परिष्कृत खड़ीबोली, शैली- प्रबन्धात्मक

छन्द- मदाक्रान्ता, अलंकार- अनुप्रास और उपमा

गुण- प्रसाद, शब्द शक्ति- अभिधा एवं लक्षणा।

"क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी.

मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।

जल पंजर-गत अब अरे अधीर, अभागे,

वे ज्वलित भाव थे स्वयं मुझी में जागे।

Edit with WPS Office

पर था केवल क्या ज्वलित भाव ही मन में?

क्या शेष बचा कुछ न और जन में?

कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य-मात्र क्या तेरा?

पर आज अन्य-सा हुआ वत्स भी मेरा।

थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,

जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके?

छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,

रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे?"

[**शब्दार्थ-** दासी -सेविका;निज -अपना;पंजर मत -शरीर के अन्दर स्थित:अधीर -धैर्य न रखने वाला:वात्सल्य -सन्तान से प्रेम का भाव: वत्स -पुत्र;त्रैलोक्य -तीनों लोक (धरती, आकाश, पाताल); मातृपद -माता का पद;दुहाई-दीनतापूर्ण की गई याचना।]

सन्दर्भ- प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी पाठ्यपुस्तक के 'पद्य-मंजरी' में संकलित कविता 'कैकेयी का पश्चात्ताप' से लिया गया है जो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' के आठवें सर्ग में संग्रहित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश में कैकेयी, राम को वनवास भेजने के लिए स्वयं को दोषी ठहराते हुए पश्चाताप कर रही है।

व्याख्या- कैकेयी, मन्थरा को निर्दोष बताते हुए कहती हैं कि मन्थरा तो साधारण-सी दासी है। वह भला मेरे मन को कैसे बदल सकती! सच तो। यह है कि स्वयं मेरा मन ही अविश्वासी हो गया था। अपने मन को अधीर और अभागा मान कैकेयी अपने अन्तर्मन को कहती हैं कि मेरे शरीर में स्थित हे मन! ईर्ष्या-द्वेष से परिपूर्ण वे ज्वलन्त भाव स्वयं तझमें ही जागे थे। तत्पश्चात् वह अगले ही क्षण सभा को सम्बोधित करते हुए प्रश्न पूछती हैं कि क्या, मेरे मन में केवल आग लगाने वाले भाव ही थे? क्या मुझमें और कुछ भी शेष न था? क्या मेरे मन के वात्सल्य भाव अर्थात् पुत्र-स्नेह का कुछ भी मूल्य नहीं? किन्तु हाय आज स्वयं मेरा पुत्र ही मुझसे पराए की तरह व्यवहार करता है। अपने कर्मों पर पछताते हुए कैकेयी आगे कहती हैं कि तीनों लोक अर्थात् धरती, आकाश और पाताल मुझे क्यों न धिक्कारे, मेरे विरुद्ध जिसके मन में जो आए वह क्यों न कहे, किन्तु हे राम! मैं तुमसे दीन स्वर में

Edit with WPS Office

बस इतनी ही विनती करती हूँ कि मेरा मातृपद अर्थात् भरत को पुत्र कहने का मेरा अधिकार मुझसे न छीना जाए।

<u>काव्य सौन्दर्य</u>

भाव पक्ष

(i) प्रस्तुत पद्यांश में कैकेयी ने अपनी उस विवशता को स्पष्ट किया है जब एक माँ अपनी सन्तान के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहती है, बावजूद इसके उसे उस सन्तान से प्यार नहीं मिलता।

(ii) रस करुण

कला पक्ष

भाषा- परिष्कृत खड़ीबोली, शैली- प्रबन्धात्मक

छन्द- मदाक्रान्ता, अलंकार- अनुप्रास और उपमा

गुण- प्रसाद, शब्द शक्ति- लक्षणा एवं व्यंजना।

"कहते आते थे यही सभी नरदेही,

“माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।”

अब कहें सभी यह हाय! विरुद्ध विधाता;-

“है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।”

बस मैंने इसका बाह्य-मात्र ही देखा,

दृढ़ हृदय ने देखा, मृदुल गात्र ही देखा।

परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,

इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा।

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी-

‘रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।"

Edit with WPS Office

[शब्दार्थ- नरदेही-मानव तन धारण करने वाला, मनुष्य; कमाता -बुरी माता; । कुपुत्र -बुरा पुत्र; विधाता -ईश्वर;बाहा-मात्र -बाहरी दल -स्थिर, कठोर; मृदुल -कोमल;गात्र -गात, शरीर परमार्थ-दूसरों का हित साधा -पूरा किया; अभागिन -भाग्यहीना]

सन्दर्भ - प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी पाठ्यपुस्तक के 'पद्य-मंजरी' में संकलित कविता 'कैकेयी का पश्चात्ताप' से लिया गया है जो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' के आठवें सर्ग में संग्रहित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पद्यांश में कैकेयी स्वयं को धिक्कारते हुए भरत के हृदय को न समझ पाने की असमर्थता को व्यक्त कर रही हैं।

व्याख्या- आत्मग्लानि में डूबी हुई कैकेयी कहती हैं कि अभी तक तो मानव जाति में यही कहावत प्रचलित थी कि पुत्र, कुपुत्र भले ही हो जाए, माता कभी कमाता नहीं होती अर्थात् पुत्र माता के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने में चाहे कितनी भी लापरवाही क्यों न दिखाए, उनके प्रति कितना भी अपराध क्यों न करे, माता उसे क्षमा करके उसके प्रति अपना उत्तरदायित्व सदा निभाती ही रहती है, किन्तु अब तो सभी लोग यह कहेंगे कि विधाता के बनाए नियमों के विरुद्ध यहाँ पुत्र तो पत्र ही है, माता ही कमाता हो गई है अर्थात् संसार मुझ पर बुरी माता होने का आरोप लगाएगा. क्योंकि मैंने पुत्र के हित के विरुद्ध कार्य किया है।

कैकेयी अपने दोष गिनाते हुए आगे कहती हैं, कि मैंने अपने पुत्र (भरत) का केवल बाहरी रूप ही देखा है, उसके दृढ़ हृदय को मैं न समझ सकी। मेरी दृष्टि बस उसके कोमल शरीर तक गई, उसके परमार्थी स्वरूप को मैं अब तक न देख सकी। इन्हीं कारणों से आज मैं इन समस्याओं से घिरी हूँ और मेरा जीवन दुभर हो गया है। अब तो युगों-युगों तक मैं दुष्ट माता के रूप में जानी जाऊँगी। मुझे याद कर लोग कहेंगे कि रघुकुल में एक अभागिन रानी थी, जिसे स्वयं उसके पुत्र ने त्याग दिया था।

<u>काव्य सौन्दर्य</u>

भाव पक्ष

(i) यहाँ कैकेयी के द्वारा भरत को न पहचान सकने के पश्चाताप का भाव व्यक्त किया गया है, साथ-ही-साथ समाज में होने वाले अपयश से उन्हें अत्यधिक चिन्तित भी दर्शाया गया है।

(ii) रस करुण

कला पक्ष

Edit with WPS Office

भाषा- परिष्कृत खड़ीबोली, शैली- प्रबन्धात्मक

छन्द- मन्दाक्रान्ता, अलंकार- अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश एवं उपमा

गुण- प्रसाद, शब्द शक्ति- अभिधा एवं लक्षणा।

"निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा

"धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा"

"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,

जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।"

पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई-

"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।"

[शब्दार्थ- जीव-आत्मा; लाल-पुत्र; माई-माता; जना-जन्म दिया]

सन्दर्भ- प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी पाठ्यपुस्तक के 'पद्य-मंजरी' में संकलित कविता 'कैकेयी का पश्चात्ताप' से लिया गया है जो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' के आठवें सर्ग में संग्रहित है।

प्रसंग- यहाँ कैकेयी द्वारा पश्चाताप व्यक्त करने पर राम सहित उपस्थित सभाजनों ने उन्हें भरत जैसे पुत्र की माता होने पर धन्य कहा है।

व्याख्या- कैकेयी पश्चाताप व्यक्त करते हुए कह रही हैं कि अब तो जन्म-जन्मान्तर तक मेरी आत्मा यह सुनने के लिए विवश होगी कि अयोध्या की रानी कैकेयी को महा स्वार्थ ने घेरकर ऐसा अनुचित कर्म कराया कि उसने धर्म के मार्ग का त्याग कर अधर्म के मार्ग का अनुसरण किया। कैकेयी की इन बातों को सुनकर राम सहित सभासदों ने एक स्वर में कहा कि भरत जैसे महान् पुत्र रत्न को जन्म देने वाली माता सौ-बार धन्य हैं। अतः यहाँ सभी लोगों द्वारा एक मत से कैकेयी को निर्दोष कहा जा रहा है।

<u>काव्य सौन्दर्य</u>

Edit with WPS Office

भाव पक्ष

(i) प्रस्तुत पद्यांश में एक ओर कैकेयी के द्वारा स्वयं को धिक्कारने तोदूसरी ओर राम सहित सभासदों द्वारा उनका गुणगान करने के भाव दर्शाए गए हैं।

(ii) रस करुण

कला पक्ष

भाषा- परिष्कृत खड़ीबोली, शैली- प्रबन्धात्मक, छन्द- मन्दाक्रान्ता

अलंकार- पुनरुक्तिप्रकाश, अनुप्रास एवं उपमा, गुण- प्रसाद

शब्द शक्ति- अभिधा एवं लक्षणा।

✍ प्रमोद कुमार 'शिवम'

Edit with WPS Office